स्त्री के लैंगिक कोड की मारीचिका

विकास नारायण राय

स्त्रियों के लैंगिक उत्पीड़न का एक और मर्दाना क्षेत्र क़ानून की गिरफ्त में आने को है। पुरुष वर्चस्व के नजरिये से बेहद नाजुक 'इज्जत' हत्या का मसला फिलहाल उच्चतम न्यायालय के रडार पर है। यदि यौनिक हिंसा, लैंगिक उत्पीड़न का सर्वाधिक अपमानजनक रूप रही हैं तो 'इज्जत' हत्याएं इसका सर्वाधिक बर्बर रूप होती हैं। इसी तरह, घरेलू हिंसा में स्त्री का दासत्व और सम्पदा/शिक्षा/विवेक जैसी वंचनाओं में उसका शोषण मुखरित होता आया है। स्थिति में बुनियादी बदलाव के लिए जरूरी था कि इन क्षेत्रों में बने तमाम लैंगिक कानून स्त्री के सशक्तिकरण का माध्यम सिद्ध होते। पर बजाय स्त्री को अधिकार-सम्पन्न बनाने के इन कानूनों का जोर राज्य के प्राधिकार को मजबूत करने पर रहा है।

अगर 'इज्जत' हत्याओं से निपटने के नाम पर ऐसे ही प्रोफाइलवाले विशेष कानूनी प्रावधान कर भी दिये जाएं तो उनके परिणाम भी जब-तब सुर्खियाँ बटोरनेवाले कन्या-भ्रूण हत्या की रोकथाम के कानूनों से भिन्न क्या ही होंगे? पर इसका मतलब यह नहीं कि 'इज्जत' हत्याओं को न्याय की मंजिल पर पहुंचाने का दुष्कर कार्य सामान्य कानूनों-भारतीय दंड संहिता, दंड प्रक्रिया संहिता और भारतीय साक्ष्य अधिनियम - के बूते की बात है, जैसा कि प्रायः सरकारी रवैया जताता रहा है। व्यवहार में तो सामान्य कानूनी प्रक्रियाएं इन 'समाज-सम्मत' जघन्य मामलों में हत्यारों और उनके सहयोगियों के लिए अभयदान के रास्ते ही खोलती आयी हैं। दरअसल, महिला कानूनों को फायर ब्रिगेडी या पोस्ट-मार्टमी भूमिका के जिस दायरे में अब तक रखा गया है, उसे तोड़ने की जरूरत है।

विशेष महिला कानूनों की अपनी एक विकट दुनिया है। इन्हें बनाना कठिन है और निभाना कहीं ज्यादा जटिल। एक ओर, भागीरथ प्रयासों और लम्बी प्रतीक्षा के बाद बने ये कानून महिलाओं को समय पर वांछित राहत नहीं दे पा रहे हैं और दूसरी ओर, आरोप लगते हैं इनके दुरुपयोग के भी। बजाय महिला सशक्तिकरण का वातावरण बनाने के, जो इन कानूनों का घोषित लक्ष्य होता है, इनके क्रियान्वयन पर तिकड़मबाजी का मकड़जाल हावी हो जाता है। स्त्री विरुद्ध हिंसा के विभिन्न आयामों पर टुकड़ों-टुकड़ों में एकांगी कानूनों के बनने से ही ऐसा हुआ है। यानी, सभी के लिए इसमें सबक है : सतह पर आये उत्पीड़नों के विरुद्ध गुहार लगाने के विशेष कानूनी मंच बना देना ही काफी नहीं है; दरअसल, रोजमर्रा की हिंसा से जूझ रही स्त्री को उसके उत्पीड़न की जड़ों को खोदनेवाले समग्र लैंगिक कोड की अब भी प्रतीक्षा है।

महिला विरुद्ध हिंसा को लेकर भारतीय समाज में सजग प्रतिरोधों की निरंतर मुहिम की परम्परा रही है। इस दिशा में देश के राज्यतंत्र की लोकतांत्रिक गतिकी की भी, बेशक बेहद धीमी रफ्तार से सही, तमाम तरह की स्वाभाविक पहलें गिनाई जा सकती हैं। फलस्वरूप, महिला उत्पीड़न के विभिन्न रूपों पर एक के बाद एक लैंगिक कानून बनते गये हैं, दहेज निषेध, बाल-विवाह निषेध, भ्रूण-हत्या निषेध, विरूपित चित्रण का निषेध, मानव तस्करी पर रोक, कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न की रोकथाम, घरेलू-हिंसा की रोकथाम, सम्पत्ति का उत्तराधिकार, स्थानीय शासन में 33 प्रतिशत का संवैधानिक आरक्षण, इनमें प्रमुख हैं। साथ ही साथ उच्च न्यायालयों ने रोजगार में बराबरी, लिव इन सम्बन्ध, तलाक, खर्चे, इत्यादि संवेदी क्षेत्रों में स्त्री-परक रुख पर ही जोर रखा है।

इसी कड़ी में, जून 2010 से उच्चतम न्यायालय में देश के विभिन्न हिस्सों में हो रही 'इज्जत' हत्याओं पर एक अलग कानून बनाने की याचिका विचाराधीन है। लैंगिक न्याय का यह उपेक्षित क्षेत्र विधिक पहल के मामले में लगभग अछूता रहा है, हालांकि, संयुक्त राष्ट्र संघ के आंकड़ों के अनुसार विश्व में हर वर्ष होने वाली करीब 5000 'इज्जत' हत्याओं में 1000 भारत में (इतनी ही पाकिस्तान में भी) होती हैं। खुद को सांस्कृतिक खलीफा कहलानेवाले हमारे देश में 'इज्जत' के नाम पर पुरुष वर्चस्व के उत्पीड़न/आतंक के चलते युवा लड़कियों में आत्महत्याओं की भी कमी नहीं है। ऐसे प्रकरणों के दौरान 'विद्रोही' लड़की को कुनबे द्वारा तरह-तरह से शारीरिक एवं मानसिक हिंसा पहुंचाना और बाहरी दुनिया से काटकर घर में सीमित करना या उसकी जबरदस्ती शादी कर देना तो और भी आम हैं।

उच्चतम न्यायालय द्वारा 'इज्जत हत्याओं' पर याचिका विचारार्थ स्वीकार किये जाने के तुरंत बाद अगस्त 2010 में राष्ट्रीय महिला आयोग ने इस विषय पर एक दमदार ड्राफ्ट बिल तैयार किया था। भारत के विधि आयोग ने भी अगस्त 2012 में अपनी नवीनतम रपट, एक अन्य ड्राफ्ट बिल के साथ, केंद्र सरकार को भेजी हुयी है। काफी अरसे से, विशेषकर हरियाणा में, लैंगिक मोर्चे पर सक्रिय नागरिक संगठनों की राय रही है कि 'इज्जत' के नाम पर हो रही बेटियों की हत्याओं को रोकने के लिए विशेष तरह के कानून बनाए जाएँ; क्योंकि ऐसी हत्याएं तमाम दूसरी हत्याओं से अलग किस्म की होती हैं, और

विधि आयोग की रपट तकनीकी और उलझाऊ ज्यादा है, उत्पीड़तों के मतलब की कम। आयोग ने अपनी प्रस्तावना में 'इज्जत' हिंसा का हृदय विदारक चित्रण करने के बाद, तकनीकी-विधिक लीपापोती के आधार पर, महिला आयोग द्वारा सुझाए कानूनी परिवर्तनों को अनावश्यक करार दिया है। उनके ड्राफ्ट बिल का एकमात्र जोर खापों की प्रत्यक्ष उकसानेवाली भूमिका को दंड की परिधि में लाने पर है। वह भी खापों की पुरुष वर्चस्व की जकड़न की इस्पाती बुनियादों को बिना हिलाए। उनके बिल में सगोत्र विवाह जैसे मसलों पर खापों को शिक्षित करने की बात भी इसी मासूमियत के तहत की गयी है कि यदि खापों की फतवेवाली बैठकें दंडनीय कर दी जाएं तो 'इज्जत' हत्याएं भी नहीं होंगी। राष्ट्रीय महिला आयोग ने अपने ड्राफ्ट बिल में जहां स्वयं को निर्दोष साबित करने का जिम्मा आरोपियों के खाते में रखा था, जिसे केंद्र सरकार ने भी माना है, विधि आयोग ने इसे प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत के विपरीत बताकर केवल खाप बैठकों में शरीक होनेवालों के विरुद्ध 'प्रिजम्पशन' की बात की है।

सामान्य कानूनी प्रावधान इन समाज-सम्मत जघन्य अपराधों में न्याय नहीं कर पा रहे हैं।

उच्चतम न्यायालय के समक्ष केंद्र सरकार ने महिला आयोग के ड्राफ्ट बिल के विशेष कानून के बजाय, हालांकि लगभग उसी तर्ज पर, मौजूदा कानूनों/प्रक्रियाओं में ही संशोधन कर कड़े प्रावधानों को लाने की बात रखी है। हरियाणा सरकार ने पहले शपथपत्र में तो केंद्र की हां में हां मिलाई और फिर खापों के दबाव में पलटी खाकर नए शपथपत्र में घोर यथास्थितिवादी मुद्रा अपना ली है। अब उनका दावा है कि 'इज्जत' हत्याओं को हत्या के सामान्य कानूनों से ही निबटा जाना चाहिए, बिना यह पड़ताले कि फिर इन मामलों में दंड इतना दुर्लभ क्यों है? स्वयं मुख्यमंत्री हुड्डा अपने गृहनगर रोहतक की हालिया 'इज्जत' हत्याओं के सन्दर्भ में सार्वजनिक रूप से कहते रहे हैं कि (मौजूदा) कानून ही काफी हैं। वे अकेले नहीं हैं; हरियाणा में हर प्रमुख राजनीतिज्ञ का यही सुर सार्वजनिक रूप से सुनने को मिलेगा।

विधि आयोग की रपट तकनीकी और उलझाऊ ज्यादा है, उत्पीड़तों के मतलब की कम। आयोग ने अपनी प्रस्तावना में 'इज्जत' हिंसा का हृदय विदारक चित्रण करने के बाद, तकनीकी-विधिक लीपापोती के आधार पर, महिला आयोग द्वारा सुझाए कानूनी परिवर्तनों को अनावश्यक करार दिया है। उनके ड्राफ्ट बिल का एकमात्र जोर खापों की प्रत्यक्ष उकसानेवाली भूमिका को दंड की परिधि में लाने पर है। वह भी खापों की पुरुष वर्चस्व की जकड़न की इस्पाती बुनियादों को बिना हिलाए। उनके बिल में सगोत्र विवाह जैसे मसलों पर खापों को शिक्षित करने की बात भी इसी मासूमियत के तहत की गयी है कि यदि खापों की फतवेवाली बैठकें दंडनीय कर दी जाएं तो 'इज्जत' हत्याएं भी नहीं होंगी। राष्ट्रीय महिला आयोग ने अपने ड्राफ्ट बिल में जहां स्वयं को निर्दोष साबित करने का जिम्मा आरोपियों के खाते में रखा था, जिसे केंद्र सरकार ने भी माना है, विधि आयोग ने इसे प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत के विपरीत बताकर केवल खाप बैठकों में शरीक होनेवालों के विरुद्ध 'प्रिजम्पशन' की बात की है।

जाहिर है कि चाहे नये नाम से या नये प्रावधानों को शामिल कर, देर-सबेर अलग से खाप कानून बनेंगे ही। पर क्या इनका हश्र भी घरेलू हिंसा की रोकथाम या कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न रोकने वाले एकांगी कानूनों जैसा ही नहीं होगा, पीड़ित को सीमित दायरे में उलझाने में, न कि समग्र राहत दे पाने में! उच्चतम न्यायालय की पहल से, स्त्रियों पर एसिड हमलों को लेकर बाजार में एसिड की उपलब्धता/बिक्री को नियंत्रित करने के उपायों पर केंद्र सरकार विचार कर रही है। पुरुष की स्त्री पर अपनी मनमानी थोपने के इस बर्बरतम तरीके पर यह तकनीकी लगाम, अंततः एक दूर की कौड़ी ही सिद्ध होगी। आज स्त्री को पैतृक व ससुराली सम्पत्ति में हिस्सा दिलानेवाले कानूनों की भी कमी नहीं है; पर हिस्सा पाने/मांगने की नौबत कितनों की आ पाती है, हिस्सा मिलता कितनों को है और वह भी किस कीमत पर!

लैंगिक कानूनों की यही त्रासदी चलती आ रही है। दशकों की जद्दो-जहद के बाद इनका जो स्वरूप सामने आता है वह स्त्री की विवशता एवं कमजोरी को तो विशद रूप से चिन्हित करता है पर उसके लिए सशक्तिकरण के सहज रास्ते नहीं खोल पाता। इन कानूनों में स्त्री उत्पीड़न की व्यापकता और भयावहता को टुकड़ों में बाँट कर देखने से स्त्री विरुद्ध हिंसा की समग्रता ओझल रहती है। लिहाजा इन विधिक उपायों में उत्पीड़न की अंतर्वस्तु की अनदेखी होती है। अनेकों एकांगी कानूनों के माध्यम से होनेवाला, राज्य का, स्त्री का नहीं, ऐसा बहुमंचीय दखल स्त्री की अपनी प्रतिरोधक ऊर्जा को भी बांटता ही है।

इस बुनियादी खोट के चलते स्त्री को, तमाम संघर्षों के बावजूद, लैंगिक कानूनों से मिलनेवाला न्याय एक सतही कवायद बना हुआ है। मसलन, 'इज्जत' की ही तरह 'सम्पत्ति' को लेकर बेटियों/बहनों/पत्नियों की हत्या के मामले भी हैं पर उन्हें लैंगिक जघन्यताओं में शामिल ही नहीं किया जाता; इन हत्याओं को क्या कानून-व्यवस्था के पहरुए, क्या नागरिक समाज, क्या मीडिया और क्या अदालतें, सभी सामान्यतः होनेवाली हत्याओं की श्रेणी में ही रखते हैं। जबकि 'इज्जत' की ही तरह 'सम्पत्ति' के मसले पर भी मर्द का लैंगिक नजरिया ही हावी होता है।

जाहिर है कि लैंगिक कानूनों के वर्तमान एकांगी स्वरूप, पुरुष वर्चस्व का स्त्री शोषण से अन्तर्सम्बंध बिम्बित कर ही नहीं सकते, न अपराध को चिन्हित करने में और न दंड के निर्धारण में। क्योंकि उत्पीड़न के किसी एक सतही स्वरूप पर केन्द्रित ये कानून स्त्री की असहायता को कम नहीं करते; ये स्त्री को संवेदनहीन राज्य की भूमिका के रहमो-करम पर रखते हैं और मुंह की खाते हैं। अंततः यह सारी कवायद आपराधिक आंकड़ों के संसार का हिस्सा बन कर रह जाती है। लिहाजा 'अपनों' के भावनात्मक ब्लैकमेल और कानूनी प्रक्रियाओं की भूल-भुलैया के सामने नतमस्तक रहना ही स्त्री की सामान्य नियति बनी हुयी है।

भविष्य में साकार होनेवाले एकांगी खाप कानून भी उसकी इसी नियति को मजबूत करने जा रहे हैं, जिसमें उदासीन राजनीतिज्ञों व खानापूर्ति में लगी कानून-व्यवस्था की मशीनरी पर हत्यारों को उपलब्ध चोर दरवाजे बंद करने का दबाव नदारद होगा। इससे कहीं बेहतर मॉडल हो सकते हैं, 2005 का 'सूचना का अधिकार' और 2006 का 'वन अधिकार अधिनियम', जिनमें कम से कम उत्पीड़ितों के अधिकार और राज्य के प्राधिकार के बीच एक बेहतर संतुलन तो नजर आता है। ■

बलात्कार के पीछे कामुकता नहीं, पुरुष वर्चस्व

संसद से सुप्रीम कोर्ट तक 'संभावित यौन अपराधी'

मज़दूर मोर्चा दिल्ली ब्यूरो

सुप्रीम कोर्ट के जज स्वतंत्र कुमार, जो फ़िलहाल नेशनल ग्रीन ट्रिब्यूनल के चेयरमैन का पद 'सुशोभित' किये हुए हैं, पर स्टेला जेम्स नामक लॉ-इन्टर्न ने यौनिक दुर्व्यवहार का आरोप लगाया है। सुप्रीम कोर्ट के जज पर इस तरह का आरोप दुलर्भ बात है। स्वयं पीड़ित को, वकील होते हुए भी, अपनी शिकायत सार्वजनिक करने में महीनों लग गये।

सांसदों पर, यौन दुर्व्यवहार के आरोप इतने दुर्लभ नहीं हैं। बसपा सांसद धनंजय सिंह जो घरेलू नौकरानी के कत्ल के मामले में फ़िलहाल जेल में है, पर उसके संसदीय क्षेत्र की एक दिल्ली निवासी विवाहित महिला ने सन् 2005 से बलात्कार का आरोप लगाया है। इस महिला का पति जो उसी इलाके का छुटभैया राजनीतिक है ही धनंजय सिंह को अपने बड़े भाई जैसा बताकर पत्नी को उस के पास दिल्ली लाया था। पत्नी के आरोप के अनुसार, उसके बाद धनंजय सिंह ने उससे जबरन यौन सम्बन्ध बनाने का सिलसिला शुरू कर दिया।

जज स्वतंत्र कुमार प्रसंग की पीड़ित लड़की कोलकता नेशनल लॉ स्कूल की अन्तिम वर्ष की छात्रा थी जब स्वतंत्र कुमार ने उसे इन्टर्न के रूप में कैम्पस में जाकर चुना। यह लड़की अब सामने इसलिये भी आई है कि आगे उसके जैसी अन्य लड़कियां यौन-हमलों के खतरों के प्रति सावधान रहें। पीड़ित के अनुसार उसके और चुप रहने का मतलब होता उसकी तमाम कानूनी पढाई का व्यर्थ जाना।

सांसद धनंजय सिंह एक आपराधिक पृष्ठभूमि का व्यक्ति है और अपने इलाके में उसकी पहचान एक शातिर माफ़िया के रूप में है। वह फ़िरौती, कत्ल, कब्जे, बलवे इत्यादि के दर्जनों मुकदमों का अपराधी है। उसका दिमाग इस कदर शातिर है कि शासन संचालित पुलिस मुठभेड़ से बचने के लिये उसने पुलिसिया गुर्गों की मदद से अपनी एक झूठी मुठभेड़ में मृत्यु का ड्रामा रचाया। इस ड्रामे में एक निरपराध खेतीहर मज़दूर को धनंजय सिंह बता कर पुलिस द्वारा मार दिया गया। अब इन पुलिस वालों पर हत्या का मुकदमा चल रहा है।

जज स्वतंत्र कुमार के दिमाग को तो हम शातिर नहीं कह सकते। पर उसकी पहचान भी एक यौन उत्पीड़क की रही है। जानकारों का कहना है कि स्टेला जेम्स के खुलकर सामने आने के बाद अब कई और उत्पीड़ित महिलायें भी सामने आ सकती हैं। प्रश्न यह है कि सांसद धनंजय सिंह और जज स्वतंत्र कुमार में समानता क्या है? क्या वे कामुकता के हाथों विवश होकर ऐसा घटिया कृत्य करते हैं?

दरअसल, बलात्कार पुरुष-वर्चस्व का खेल है। धनंजय सिंह और स्वतंत्र कुमार प्राधिकार सम्पन्न होने के कारण ही अपने पीड़ितों पर यौन-हिंसा कर सके। पर एक जज और एक सांसद होते हुए भी? क्या हिन्दुस्तान में हर मर्द लैंगिक अपराधी नहीं होता? क्या हर परिवार में लड़के को लड़की पर तरहीज नहीं दी जाती? क्या लड़के को लड़की पर वर्चस्व जमाने की और लड़की को चुपचाप सहने की ट्रेनिंग नहीं दी जाती?

अन्ततः स्वतंत्र कुमार और धनंजय सिंह भी इसी पुरुष मानसिकता के शिकार हैं। जैसे ही वे प्राधिकार सम्पन्न होते हैं, स्त्री का उत्पीड़न उनके लिये एक सहज प्रवृत्ति बन जाती है।